भारत में भक्ति आन्दोलन : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

Dr. Sanjeet
Lecturer in History
G.S.S.S. Baniyani , District- Rohtak (HR.)

शोध–आलेख सार: भारत में समय–समय पर अनेक समाज सुधार आन्दोलन चलते रहे हैं और इनका भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता रहा है। इस क्रम में भारत में हिन्दू धर्म सुधार आन्दोलन के उद्‌भव एवं विकास का अपना विशेष महत्व है। चूंकि मध्य युग में भारत में हिन्दू धर्म के सिद्धान्त मोक्ष मार्ग के प्रति अवनति देखी गई तथा भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात् बड़ी संख्या में हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन किया तथा हिन्दू धर्म की स्थिति समाज में दयनीय हो गई। इस समय मुस्लिम शासकों ने हिन्दू की धार्मिक स्वतंत्रता समाप्त कर दी तथा धर्म पर कर लगा दिया। लेकिन धीरे–धीरे हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में समन्वयवादी भावना दृष्टिगोचर हुई। इसके पीछे अकबर जैसे उदारवादी शासकों की अहम् भूमिका रही। इसी बीच दक्षिण भारत में सुधार की एक लहर की उत्पति हुई जिसे भक्ति आन्दोलन कहा जाता है। धीरे–धीरे यह लहर एक आन्दोलन में बदल गई और उत्तर भारत तक फैल गई। भक्ति आन्दोलन ने समाज सुधार को नया रूप दिया और धीरे–धीरे भारतीय समाज में नई चेतना पैदा हुई। प्रस्तुत शोध पत्र में भक्ति आन्दोलन के उद्‌भव, विकास एवं प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

मूलशब्द: हिन्दू धर्म, मोक्ष, इस्लाम, भक्ति आन्दोलन, धार्मिक पुनर्जागरण, धार्मिक सहिष्णुता, हिन्दू–मुस्लिम एकता।

भूमिका: वस्तुतः भक्ति आन्दोलन भारत का एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण आन्दोलन था।[1] सल्तनत काल की धार्मिक नीति में भारत में इस्लाम के आगमन का अपना विशेष महत्व है। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद भारत में शक्ति, आतंक तथा बलप्रयोग के प्रभाव से अनेक हिन्दूओं ने धर्म–परिवर्तन किया। यद्यपि धार्मिक जटिलताओं, कर्मकाण्डों तथा झूठे आडंम्बरो के कारण हिन्दू धर्म में विकृति आ चुकी थी, अतः अनेकों हिन्दूओं ने स्वतः ही इस्लाम को स्वीकार कर लिया। शंकाराचार्य के अनुसार ज्ञान को ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया गया था, वह धारणा साधारण जनता को हिन्दू धर्म में आकृष्ट करने में असफल रही तथा आम जनता ने ब्रह्म को प्राप्त करने तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए एक सरल मार्ग की तलाश शुरू कर दी। इससे दक्षिण भारत में धर्म सुधार की एक नई लहर उठी तथा इसमें भक्ति को अत्याधिक महत्व दिया गया। इसे ही भक्ति आन्दोलन कहा जाता है। दक्षिण भारत में इसका उद्‌भव रामानुज के नेतृत्व में हुआ तथा उत्तर भारत में इस लहर को रामानंद लेकर आये। कबीर, नानक,

[1]आर.के गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, पृ0 224.

नामदेव, आदि को भक्ति आन्दोलन का प्रणेता माना जाता है। इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि कबीर और नानक के कारण भक्ति आन्दोलन ने एक नया मोड़ लिया।[2]

वास्तव में भक्ति आन्दोलन के दो मुख्य उद्देश्य– हिन्दू धर्म में सुधार करने जिससे वह इस्लामिक प्रचार और प्रसार के आक्रमणों को झेल सके तथा दूसरा, हिन्दू व इस्लाम में समन्वय स्थापित करना था।[3] इसमें प्रथम उद्देश्य की दिशा में तो सफलता हाथ लगी परन्तु दूसरे उद्देश्य में यह आन्दोलन पूर्णरूप से असफल सिद्ध हुआ।

भक्ति आन्दोलन का उद्भव एवं विकास– मध्यकाल में भारत में भक्ति आन्दोलन की उत्पति एवं विकास कुछ विशेष कारणों से हुई। इस समय मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से त्रस्त हिन्दूओं ने ईश्वर का सहारा लिया तथा उनकी ईश्वर के साथ निकटता की सोच ने भक्ति मार्ग को आगे बढाया। इसके साथ–साथ हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के आदान–प्रदान से सौहार्द तथा समन्वय की भावना का सूत्रपात हुआ। इससे हिन्दू –मुस्लिम एकता प्रबल हुई। इस समय इस्लाम में भक्ति भावना का उदय हुआ और उसमें कोमलता आ गई।[4]

वास्तव में भक्ति आन्दोलन के प्रणेता संतो ने इस्लाम की तरह एकेश्वरवाद की धारणा पर बल दिया तथा मूर्तिपूजा एवं जात–पात का विरोध किया। सूफी–संतों की उदारता तथा सहिष्णुता की भावना ने धर्मांधता का खण्डन किया तथा इससे हिन्दू धर्म सुधारक इस्लाम के सिद्धान्तों के निकट आये। एकेश्वरवाद की धारणा के कारण हिन्दूओं से जाति–पाती का भेदभाव समाप्त होने लगा तथा उन्होंने भी अपने धर्म को इस्लाम की तरह सुधारवादी बनाने का प्रयास किया। इसके साथ–साथ शंकराचार्य के ज्ञानमार्ग से आमजनमानस विमुख हो गया और वे मोक्ष प्राप्ति के सरल मार्ग की तरफ अग्रसर हुए। हिन्दूओं की जाति व्यवस्था के दोषों ने भी अछूत लोगों को इस्लाम की तरफ जाने को विवश किया। भारतीय समाज सुधारकों ने भी जाति–व्यवस्था को ढीला करने में अहम् योगदान दिया। इस्लाम शासकों ने हिन्दू धर्म के मन्दिरों और मूर्तियों को नष्ट किया तो हिन्दू बिना मन्दिरों और मूर्तियों के ईश्वर की उपासना करने के लिए भक्ति मार्ग की तरफ प्रवृत हो गये।

इस तरह मध्यकाल में हिन्दू धर्म में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात दक्षिण भारत में हुआ। मध्यकालीन भारत में भक्तिमार्ग का सूत्रपात जिन वैष्णव संतों ने किया उनमें रामानुज का नाम प्रसिद्ध

[2] रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 279.

[3] ओमप्रकाश, भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 407.

[4] गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतः इतिहास और संस्कृति, पृ0 143.

है।[5] तत्पश्चात् रामानंद इस परम्परा को उत्तर भारत में लेकर गये। 14वीं तथा 15वीं सदी में कबीरदास, रामानंद, नामदेव, गुरूनानक, दादू, रविदास, तुलसीदास तथा चैतन्य महाप्रभु जैसे संतों ने इस आन्दोलन को समस्त भारत में प्रसारित किया। यह एक ऐसा आन्दोलन था जिससे समस्त भारत में नई चेतना व जागृति पैदा हुई। इस आन्दोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे– हिन्दू धर्म और समाज में सुधार तथा इस्लाम व हिन्दू धर्म में समन्वय स्थापित करना। वास्तव में इस आन्दोलन को अपने प्रथम उद्देश्य में अपार सफलता मिली। परन्तु हिन्दू–मुस्लिम एकता अपने गंतव्य तक नहीं पहुंच पाई। फिर भी सूफी मत के काफी सिद्धान्त भक्ति आन्दोलन में स्वीकार किये गए।

अन्ततः यह आन्दोलन हिन्दू धर्म को आडंबरों से मुक्त करने वाला सिद्ध हुआ। इसमें चरित्र तथा आचरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया तथा मोक्ष के लिए सच्चे हृदय से भक्ति मार्ग पर चलने की सलाह दी गई। इस आन्दोलन के सभी संतों ने पूजा का विरोध किया तथा इसे जन–आन्दोलन का रूप दिया गया। सभी सन्त सुधारकों ने मानव की एकता और समानता पर बल दिया तथा जाति–पाती का विरोध किया।[6] इन्होंने आम बोलचाल की भाषा में अपने विचार आम जनता तक पहुंचाये। इनके प्रयासों से हिन्दू– मुस्लिम संस्कृति को समन्वयवादी आधार प्रदान किया गया। सभी संतों ने ईश्वर की एकता को आधार मानकर एकेश्वरवाद की धारणा पर बल दिया। इन्होंने शुद्ध हृदय से भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया और धीरे–धीरे यह आन्दोलन काफी लोकप्रिय हो गया। इससे भारतीय समाज में फैली हुई अनेक बुराईयों जैसे – सती–प्रथा, कन्या वध, दास प्रथा, आदि को दूर करने का प्रयास किया गया तथा महिलाओं के सामाजिक स्तर को सुधारने का भी प्रयास हुआ।

इस आन्दोलन के पूर्व प्रवर्तकों में विष्णु स्वामी प्रमुख हैं, परन्तु उनके द्वारा स्थापित संप्रदाय आज लुप्त प्रायः है। इसको सैद्धान्तिक आधार रामानुज द्वारा ही प्रदान किया गया। उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद की धारणा का खंडन किया तथा वैष्णव धर्म की शिक्षाओं को दार्शनिक आधार प्रदान किया।[7] उनके अनुसार ईश्वर में अनेक गुण विद्यमान हैं और वह सगुण है। उनका विचार था कि एकाग्रचित से ईश्वर की भक्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु उन्होंने अपनी शिक्षा ब्राह्मण वर्ग तक सीमित रखी तथा शूद्रों को इससे वंचित रखा। इसी कारण यह आन्दोलन उनके समय में केवल दक्षिण भारत तक सीमित रहा। उसके बाद 13वीं सदी में दक्षिण भारत में माघवाचार्य ने शंकराचार्य और रामानुज दोनों के मतों का खण्डन किया। उनके मतानुसार हरि, विष्णु, नारायण आदि एक ही ईश्वर के नाम हैं। उन्होंने

[5] गुणाकर मुले, भारतः इतिहास और संस्कृति, पृ0 272.

[6] आर.के गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, पृ0 227.

[7] नीरज श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतः प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, पृ0 43.

कर्म तथा ज्ञान मार्ग के स्थान पर भक्ति मार्ग को ही ईश्वर तथा मोक्ष की प्राप्ति का सहज तथा सरल मार्ग बताया।

भक्ति आन्दोलन को दक्षिण भारत से उत्तर भारत में लाने का कार्य रामानन्द द्वारा किया गया। उन्होंने सभी धर्मों व सम्प्रदायों के साथ सम्पर्क स्थापित किया और सभी जाति व धर्म के लोगों को अपना शिष्य बनाया। वे राम की उपासना पर बल देते थे और उनके मतानुसार सभी लोग मोक्ष के अधिकारी हैं। उन्होंने जाति–पाती व छुआछूत का खण्डन किया तथा ब्राह्मणवाद का विरोध करके सभी जाति व धर्म के लोगों को अपने साथ जोड़ा। बाद में उनके अनुयायी दो वर्गों में बंट गए। एक वर्ग का नेतृत्व तुलसीदास ने तथा दूसरे वर्ग का नेतृत्व कबीरदास ने किया।

तत्पश्चात् 15वीं सदी में वल्लभाचार्य ने भक्ति आन्दोलन के पुष्टिमार्ग को प्रतिपादित किया, जिसे शुद्ध अद्वैतवाद कहा जाता है।[8] परन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने इस मत को विकृत कर दिया तथा वे मायायुक्त एवं भोग विलास का जीवन जीने लग गये। इससे धर्म की पवित्रता को आघात पहुंचा। आगे चलकर 15वीं सदी में रामानंद के शिष्य कबीरदास ने हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म को एकीकृत करने का प्रयास किया। इन्होंने मुस्लिम तथा हिन्दू धर्म की बुराईयों के खिलाफ आवाज उठाई तथा जाति–प्रथा, धार्मिक कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि का विरोध किया। उनका एकेश्वरवाद की धारणा में दृढ विश्वास था। उनके अनुसार ईश्वर प्राप्ति केवल विशुद्ध प्रेम तथा पवित्र हृदय से ही हो सकती है। मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रेम तथा भक्ति भावना है। उनके प्रयासों से एकीकरण और समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

आगे चलकर चैतन्य महाप्रभु ने मानव भातृत्व का प्रचार किया तथा छुआछूत, जातिवाद, कर्मकाण्ड, पशुबलि, मांसाहार, मद्यपान आदि का घोर विरोध किया। उन्होंने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अपना धार्मिक आन्दोलन फैलाया। उसके बाद मराठा संतों में तुकाराम प्रसिद्ध हैं। वे अन्य संतों की तरह व्रत, तीर्थ, मूर्तिपूजा आदि के घोर विरोधी रहे हैं। महाराष्ट्र में नामदेव नामक भक्ति आन्दोलन के प्रमुख नेता रहे हैं। इन्होनें हिन्दी तथा मराठी भाषा में लेखन कार्य करके चरित्र शुद्धि पर बल दिया तथा भक्ति मार्ग को मोक्ष का मार्ग बताया।[9] तुकाराम के समकालीन अन्य संत रामदास थे, जो शिवाजी के गुरू थे। इसके अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन के अन्य संतों में रामदास, रायदास, ज्ञानेश्वर, दादू दयाल, गुरू नानक, तुलसीदास, सूरदास, तथा मीराबाई का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है।

---

[8] आर.के गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, पृ0 231.

[9] गुणाकर मुले, भारतः इतिहास और संस्कृति, पृ0 274.

भक्ति आन्दोलन का राष्ट्र पर प्रभाव– भारत में मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन का उद्भव एवं विकास एक महत्वपूर्ण घटना थी। दक्षिण भारत से शुरू होने वाला यह आन्दोलन धीरे–धीरे सारे भारत में फैल गया और इसने राष्ट्र के जीवन पर व्यापक प्रभाव डाला। इसके प्रभाव को दर्शाते हुए एम.जी'रानाडे ने अपनी पुस्तक 'राईज ऑफ दॉ मराठा पावर' में लिखा है कि इस आन्दोलन के कारण क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य का विकास, जाति बन्धन में छूट, पारिवारिक जीवन का सम्मान, महिलाओं को उंचा स्थान, मानवता तथा सहिष्णुता की भावना का विस्तार, इस्लाम के साथ आशिक रूप से समन्वय, रीति, रिवाजों और धार्मिक कर्मकाण्डों, तीर्थ व्रत का गौण स्थान, आस्था और विश्वास के साथ ईश्वर भक्ति का ज्ञान, अनेक देवी–देवताओं की पूजा का सीमित रूप से विचार और सक्रियता दोनों रूप में राष्ट्र का उत्थान हुआ।[10] इसके राष्ट्रीय जीवन पर निम्नलिखित प्रभाव दृष्टिगोचर हुए–

- इसके कारण भारत में एक धार्मिक पुनर्जागरण और सुधार की लहर चल पड़ी तथा भारत में अनेक सामाजिक तथा धार्मिक कुप्रथाओं का अन्त हो गया।
- इससे भारत में सभी धर्मों में एकेश्वरवाद तथा भक्ति भावना का प्रचार तथा प्रसार हुआ।
- इससे भारत के नैराश्रय समाज में नये जीवन का सूत्रपात हुआ। इसने ब्राह्मणवाद को खण्डित करके भक्ति मार्ग का दरवाजा सभी के लिए खोल दिया तथा ब्राह्मण तथा शूद्रों को एक ही पंक्ति में खड़ा कर दिया।
- इससे हिन्दू धर्म में व्याप्त कर्मकाण्ड तथा आडम्बरों पर कुठाराघात हुआ।
- इससे सभी जाति व धर्म के लोगों में सहिष्णुता की भावना का जन्म हुआ।
- इस आन्दोलन ने शूद्र वर्ग को भक्ति मार्ग से जोड़कर हिन्दू धर्म को व्यापक रूप दिया तथा दलितोद्वार का कार्य किया।
- इसने भारत में राजनीतिक पुनर्जागरण के बीज बो दिये और हिन्दू धर्म में राष्ट्रीय जागृति व चेतना पैदा हुई।
- इसके प्रभाव से स्थानीय भाषाओं में साहित्य सृजन का कार्य हुआ और हिन्दी, बंगला, मराठी, मैथिली, राजस्थानी, गुजराती, गुरूमुखी, आदि प्रांतीय भाषाओं की प्रगति हुई।

सारांश: इस तरह भारत में भक्ति आन्दोलन का उद्भव होने से हिन्दू–मुस्लिम एकता को बल मिला तथा हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराईयों को खत्म करने की दिशा में एक नया जोश जनता में जागृत हुआ। इसने हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति में समन्वयवादी दृष्टिकोण पैदा करके दोनों धर्मों में सहयोग व सद्भावना पैदा करने का कार्य किया। इसके बाद हिन्दू धर्म में सूफी परम्परा के अनुरूप एकेश्वरवाद की धारणा का

[10] एम.जी.रानाडे, राईज ऑफ दा मराठा पावर, पृ0 240.

सूत्रपात हुआ। इससे ज्ञान मार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग पर बल दिया गया। भक्ति मार्ग को ईश्वर प्राप्ति का साधन बताते हुए सभी सन्तों ने ज्ञान, भक्ति और समन्वय भावना पर बल दिया। धीरे–धीरे दक्षिण भारत से पैदा होने वाला यह आन्दोलन बाद में उत्तर भारत तक फैल गया। परिणामस्वरूप ब्राह्मणवाद को चुनौती मिली और दलितोद्धार के समर्थक संतों ने हिन्दू धर्म को उदारवादी बना दिया। इससे राष्ट्रीय एकीकरण को बल मिला तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार आया। अतः भक्ति आन्दोलन के कारण भारत में ब्राह्मण धर्म से पीड़ित समाज के लोगों में नई चेतना पैदा हुई। इसके बाद हिन्दू धर्म में फैली हुई समाजिक कुरीतियां समाप्त होती नजर आई। इसने जाति–पाती तथा छुआछुत को समाप्त करके जातीय अभिमान को गहरी ठेस पहुंचाई। इस तरह समस्त भारत में भक्ति आन्दोलन के उद्भव एवं विकास से नई संत परम्परा का आगमन हुआ और भक्ति मार्ग को ही मोक्ष का मार्ग माना गया।

सन्दर्भ सूची:

- राधा कमल मुखर्जी, **दॉ कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ इंडिया**, जार्ज एल्विन एण्ड एन्विन, लंदन, 1959.
- महादेव प्रसाद, **समाज दर्शन,** नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1968.
- ओमप्रकाश, **भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास,** एस. चन्द एण्ड कम्पनी, 1979.
- बी.बी.मजूमदार, **हिस्ट्री ऑफ इंडियन सोशल एण्ड पॉलिटिकल आईडियॉज**, फार्मा के.एल., कलकत्ता, 1996.
- मिथिला शरण पॉण्डेय, **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,** स्वामी प्रकाशन, जयपुर, 2000.
- पी.सी. जैन, **सामाजिक आन्दोलन का समाजशास्त्र,** नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2003.
- आर.के गुप्त, **मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला,** पोईंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004.
- एस.एल.दोषी, **भारतीय समाजः संरचना और परिवर्तन**, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2007.
- नीरज श्रीवास्तव, **मध्यकालीन भारतः प्रशासन, समाज एवं संस्कृति,** ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2010.
- राजीव कुमार श्रीवास्तव, **मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति,** यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011.
- गुणाकर मुले, **भारतः इतिहास और संस्कृति,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013।
- गजानन माधव मुक्ति बोध, **भारतः इतिहास और संस्कृति**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.
- रोमिला थापर, **भारत का इतिहास,** राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016.